''मैं भारत के किसी निषेधवादी दर्शन की बात नहीं कर रहा हूं—जबकि आप सबकी एक पश्चिमी धारणा है, कुछ न कुछ करते रहने की; मैं उसकी बात भी नहीं कर रहा। हम जिसकी बात कर रहे हैं वह बिलकुल अलग ही चीज है। मन का अबोध होना, तरो-ताजा होना जरूरी है। जहां ज्ञान का संचय है, या किसी गुरु के शब्दों की पुनरावृत्ति है, या किसी साधना का फल है वहां मन ताजा तथा अबोध नही रह सकता। क्या मन को अपने संस्कारित होने का अहसास नहीं हो सकता?''

-जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

वर्ष : 11 अंक : 3
मार्च 2017

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

संपादक : चैतन्य नागर

पृष्ठ संख्या

समस्या से निपटने के तौर-तरीके	5
उम्मीद क्यों पालता है मन	13
समस्या क्या होती है?	20

वार्षिक शुल्क : रु. 150.00
पांच वर्ष के लिए : रु. 600.00 दस वर्ष के लिए रु. 1000.00

चयन रहित सजगता का प्रश्न

क्रोध को यदि हम एक समस्या के रूप में देखते हैं तो तुरंत उसके सम्बन्ध में कुछ न कुछ करने की प्रवृत्ति मन में जगती है। या तो हम क्रोध को सही ठहराते हैं और उसे बगैर किसी ग्लानि बोध के व्यक्त करते हैं या फिर हम उसे गलत ठहराते हुए उसकी निंदा करते हैं और उसे समाप्त करने की इच्छा के कारण जाने-अनजाने में एक पीड़ादायक आतंरिक क्लेश की अवस्था में पड़ जाते हैं। कृष्णमूर्ति की शिक्षाएं इस सम्बन्ध में एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। वह निंदा और स्तुति के मार्ग को अपर्याप्त ही नहीं बल्कि अतार्किक और अनुपयोगी भी मानते हैं। उनकी स्पष्ट सोच यह है कि क्रोध या इसी तरह की कोई और समस्या हमारे परंपरागत और संस्कारबद्ध प्रत्युत्तर के कारण ही और अधिक जटिल हो गयी है। यदि वह एक समस्या है, तो उसके बारे में कोई भी अतिरिक्त गति उसे और कठिन बना देती है, उसे और अधिक उलझा देती है। यहाँ कृष्णमूर्ति एक विशेष प्रकार के अवलोकन की बात उठाते हैं जिसमें न ही कोई दमन है और न ही अभिव्यक्ति; न ही निंदा है, न ही स्तुति। अपनी शिक्षाओं में वह

इसे बार-बार चयनरहित सजगता का नाम देते हैं। इतना ही नहीं वे इसी चयनरहित सजगता को आन्तरिक स्वातंत्र्य की कुंजी भी मानते हैं।

यह चयनरहित सजगता मन के लिए इतनी बड़ी चुनौती क्यों है यह पड़ताल का विषय है। मन क्यों किसी भी मानसिक, मनोवैज्ञानिक समस्या को लेकर कुछ न कुछ करना चाहता है, क्यों नहीं बस खामोश रह कर उसे देख पाता? स्पष्ट रूप से ऐसा इसलिए भी है क्योंकि मन के अपने गहरे संस्कार हैं और उनसे बंधा हुआ मन तो बस इसी का आदी है कि वह जैसे ही किसी उद्वेलन का अनुभव करे, उसके सम्बन्ध में तुरंत ही क्रिया करे। आवश्यकता इस बात की है कि हम इसकी पड़ताल करें कि क्या चयनरहित सजगता की कोई क्षमता हमारे भीतर है और यदि है तो वह किन कारणों से निष्क्रिय हो गयी है। क्या इस तरह की सजगता वास्तव में हमें अपने संस्कारों से, अतीत के बोझ से मुक्त करती है? वास्तव में यह एक असंभव सा प्रतीत होने वाला धार्मिक सवाल है जिसका उत्तर न ही हम अपनी स्मृति से दे सकते हैं और न ही अपने संकलित ज्ञान के आधार पर। समस्या के सम्बन्ध में इस अंक में इस प्रश्न की तह तक जाने का प्रयास किया गया है कि आखिरकार वह स्थिति है क्या जिसे हम समस्या का नाम देते हैं। क्या उससे किसी तरह की सीख भी ली जा सकती है या परंपरागत तरीकों के आधार पर सिर्फ उसके साथ 'निपटने' के प्रयास किए जा सकते हैं?

परिसंवाद का यह अंक समस्या के सम्बन्ध में है। हो सकता है कि हमारे जटिल संबंधों और जीवन की कुछ और परतें उघाड़ने में यह मददगार साबित हो।

संपादक

समस्या से निपटने के तौर-तरीके

जब आपको किसी समस्या का निवारण करना होता है तब आप क्या कर रहे होते हैं: तब आप कोई परिणाम पाना चाहते हैं, आप उस समस्या से उबर आना चाहते हैं, उस परेशानी पर विजय पाना चाहते हैं। जब आप कहते हैं, ''मेरी एक समस्या है, कृपया इससे निकलने का कोई रास्ता मुझे बताइए,'' तब आप उस समस्या के कारण के साथ कोई वास्ता नहीं रख रहे होते, बल्कि आप तो बस उससे बाहर निकलने का, बच निकलने का रास्ता जानना चाह रहे होते हैं। ऐसा ही आप आर्थिक समस्या के साथ करते हैं। तब हम पूछते हैं, ''इससे बाहर निकलने का क्या रास्ता है?,'' न कि यह कि ''इस समस्या का कारण क्या है?'' इसलिए जब भी कोई किसी समस्या का समाधान करना चाहता है, जब भी वह *समाधान* शब्द का, *रास्ता* शब्द का प्रयोग करता है, तब इसका मतलब होता है कि वह उस रास्ते से भाग जाना चाहता है, बच निकलना चाहता है, उस समस्या की जगह पर किसी और चीज़ को, किसी और क्रिया को, किसी और विचार या

अहसास को रख कर, ताकि वह तुरंत कोई और समस्या खड़ी कर सके।

सेक्स की समस्या को ही लीजिए या किसी रस्म अथवा विधि-विधान की समस्या को लीजिए। यह आपके लिए एक समस्या क्यों है, और यह कहते हुए कि ''सेक्स एक बड़ी भीषण समस्या है,'' आप इस पर काबू पाना क्यों चाहते हैं या यह कि ''रस्म या विधि-विधान एक समस्या है। मैं क्या करूं? मुझे कोई रास्ता बताइए। क्या अपने गहरे अहसासों को किसी और रूप में बदलने के लिए मैं परामनोविज्ञान का अभ्यास करूं?''

समस्या का अस्तित्व ही इसलिए है क्योंकि खुद में आप समर्थ नहीं हैं, आप अपने भीतर समृद्ध नहीं है, इसलिए छोटी सी बात भी पहाड़ बन जाती है। इसलिए अपनी किसी समस्या का समाधान करने की कोशिश में, आप अधिक समृद्ध नहीं हो रहे होते हैं, समृद्धि तो वहां है ही नहीं। जबकि, कर्म में, स्वयं आप में जब संपूर्णता आती है, तब ये तमाम समस्याएं तिरोहित हो जाती हैं। इसलिए, समस्या का समाधान ढूंढने की कोशिश करने में, आप जीवन की समृद्धि को हासिल नहीं कर पाते हैं क्योंकि तब आप उसके केवल एक अंश को सुलझाने की कोशिश में लगे होते हैं, उसकी संपूर्णता को समझने की कोशिश नहीं कर रहे होते हैं।

जिस तरीके से आप समस्याओं को एक-एक करके सुलझाने की कोशिश किया करते हैं—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, लैंगिक, या अन्य कोई भी समस्या—तब आप केवल किसी एक अंश का समाधान करने की कोशिश करते हुए संपूर्ण जीवन को समझने की कोशिश कर रहे होते हैं, जिसमें आप कभी सफल नहीं हो सकेंगे क्योंकि तब आप केवल भ्रम और भ्रांति को बढ़ा रहे होते हैं, क्योंकि तब आप भ्रम व भ्रांति के जनक को, यानी अपनी ही कमी को, नहीं देख रहे होते हैं।

प्रश्नकर्ताः जब कोई किसी एक गांठ को खोलना शुरू करता है तो पाता है कि वहां तो अन्य दर्जनों गांठें मौजूद हैं। ऐसे में वह कहां से शुरू करे और कहां पर ख़त्म करे?

कृष्णमूर्तिः अगर आप किसी एक गांठ को इसलिए खोल पाते हैं क्योंकि आपने उस एक गांठ को खोलने का हल पा लिया है तब दर्जनों अन्य अनखुली गांठे तो आपके पास रह ही जाएंगी। अगर किसी समाधान की तलाश में मैं किसी एक गुत्थी को सुलझा देता हूं, किसी परेशानी, किसी समस्या को सुलझा लेता हूं तो उसके बाद मैं कोई और गांठ बना डालता हूं। अधिकतर लोग किसी कठिनाई से निकलने का रास्ता ही खोज रहे होते हैं, कोई समाधान ढूंढ रहे होते हैं। उनकी रुचि इस बात में बिल्कुल नहीं होती कि गांठ खोलना होता कैसे है, बल्कि उनका सरोकार, उनकी रुचि तो बस किसी समाधान को ढूंढ लेने में रहती है, उस कठिनाई से निकलने की जुगाड़ में रहती है।

यदि मुझे कोई कठिनाई होती है तब मैं उसके किसी समाधान की तलाश करना नहीं चाहता। मैं जानता हूं कि समाधान हैं, अनेक समाधान हैं, लेकिन मैं उस समस्या का कारण जानना चाहता हूं, और जब मैं वास्तव में यह समझ जाता हूं कि उस समस्या का कारण क्या है, फिर मैं कोई और गांठ नहीं बनाता, कोई और समस्या नहीं बनाता। मैं यदि किसी एक समस्या को सचमुच ही और पूरी-पूरी तरह समझ लेता हूं, तब कोई अन्य समस्या रह ही नहीं जाती है। कृपया इस पर विचार करें, और फिर यह बात साफ़ हो जाएगी।

चूंकि हम किसी भी समस्या को पूरी तरह देखते ही नहीं हैं, इसलिए हम और-और समस्याएं पैदा करते चले जाते हैं। हम एक समस्या से दूसरी समस्या की तरफ़ जाते रहते हैं। तब हमारा जीवन समस्याओं का एक सिलसिला बन जाता है क्योंकि हम किसी भी समस्या को समझ नहीं पाए हैं, सुलझा नहीं पाए हैं। इसलिए, सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आप किसी गांठ को खोलते कैसे हैं, न कि इस बात पर कि उसे

खोलने में आपने कौन सा समाधान अपनाया है—बल्कि इस बात पर कि आपने गांठ कैसे खोली है, किस सजगता के साथ खोली है। या तो आप किसी गांठ को देखते हुए, उसका विश्लेषण करते हुए, सावधानीपूर्वक, दिमाग लगा कर खोल सकते हैं और फिर गांठों का एक और गुच्छा बना सकते हैं; या, उस समस्या से पूरी तरह रूबरू होने के लिए, अपने दिलोदिमाग के साथ, अपने पूरे वजूद के साथ उस समस्या तक पहुंचते है, तब वह टिक नहीं पाती है, घुल कर विलीन हो जाती है। इसलिए, जिस भी चीज़ से आप मिलें, उससे पूरी तरह मिलें, और फिर मुक्त हो जाएं; और इस प्रकार जिस भी चीज़ से आप मिलेंगे—जिसे कि आप समस्या कहते हैं—वह अपना कोई निशान तक नहीं छोड़ पाएगी और पूरी तरह चली जाएगी।

प्रश्नकर्ताः कोई अपनी किसी ऐसी समस्या से कैसे निजात पाए जो कि उसे परेशान कर रही हो?

कृष्णमूर्तिः किसी भी समस्या को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे हम अपना संपूर्ण व समूचा अवधान दें, तवज्जो दें। हमारे चेतन तथा अवचेतन मन या अंतर्मन को उसे सुलझाने में सहायता करनी चाहिए, लेकिन यह दुर्भाग्य है कि अधिकतर लोग समस्या का निवारण केवल ऊपरी तौर पर करने की कोशिश किया करते हैं, यानी अपने मन के केवल उस एक छोटे से भाग द्वारा ही कोशिश करते हैं जिसे हम चेतन मन कहते हैं, बुद्धि कहते हैं। और, यह चेतन मानस एक तैरते हिमशैल जैसा होता है, जिसका कि एक बड़ा भाग तो जलमग्न रहता है और केवल एक छोटा सा हिस्सा ही ऊपर व बाहर तैरता नज़र आता है। हम अपने चेतन मानस के केवल इस बाहर से दिखने वाले हिस्से से ही परिचित रहते हैं, लेकिन इसके भ्रमग्रस्त, बड़े, गहरे अवचेतन और आंतरिक भाग को शायद ही कभी देखते व जानते हों।

अपनी समस्या को हम अगर सचमुच समझना चाहते हैं तो सबसे पहले तो हमें अपने चेतन मन में, अपने सतही मन में व्याप्त भ्रम को, उलझ-पुलझ को हटा कर उसे साफ़-सुथरा करना होगा और वह भी समग्र रूप से, अच्छी तरह सोच-विचार करके, महसूस करके। तब, इस सजग रूप से की गई सफ़ाई से, इस खुले और सजग मन में से अंतर्मन स्वयं को प्रकट कर सकता है। चेतन मन में परत-दर-परत भरी हुई सामग्री को निकाल कर जब इस तरह देखा जाता है, तब समस्या का वजूद नहीं रहता।

प्रश्नकर्ताः किसी समस्या पर हम सोच-विचार कैसे करें?

कृष्णमूर्तिः यह एक बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न है—किसी समस्या पर हमें कैसे सोच-विचार करना चाहिए? अधिकतर हम लोग किसी भी समस्या का कोई जवाब ढूंढ लेना चाहते हैं, लेकिन यह लड़का पूछ रहा है कि किसी समस्या के आ जाने पर उसके बारे में हम सोच-विचार कैसे करें—यह एक अलग बात है। यह लड़का समस्या के किसी हल की, किसी जवाब की तलाश नहीं कर रहा है—मुझे तो ऐसा ही लग रहा है।

किसी समस्या का कोई जवाब होता ही नहीं है, इसलिए किसी जवाब की, किसी हल या समाधान की तलाश करना बेवकूफ़ी है। लेकिन अगर मैं यह जानता हूं कि किसी समस्या पर सोच-विचार कैसे किया जाए, तो वह सोच-विचार ही उस समस्या का जवाब हो जाता है। मान लीजिए कि आपके सामने गणित संबंधी कोई समस्या है और आपको उसका उत्तर मालूम नहीं है, लेकिन उसका उत्तर किताब के आख़िर में दिया हुआ है, इसलिए आप पेज पलटते हुए आख़िर में जा कर उसका उत्तर ढूंढ लेते हैं। लेकिन ज़िंदगी में ऐसा नहीं होता है। कोई भी आपको उत्तर बताने वाला नहीं है, और अगर कोई ऐसा कहता है कि वह आपको उत्तर बता सकता है तो वह मूर्ख है। लेकिन,

अगर आप यह जानते हैं कि किसी समस्या पर कैसे सोच-विचार किया जाए, उसे कैसे देखा जाए, कैसे उस तक पहुंचा जाए, तब वह सोच-विचार करना ही, उसे देखना ही समाधान बन जाता है।

आप जानना चाहते हैं कि किसी समस्या पर सोच-विचार कैसे किया जाए। जाहिर है कि पहली बात तो यही है कि समस्या से डरा न जाए। क्योंकि, अगर आप डर गए तो फिर उस समस्या को आप भली-भांति देख नहीं पाएंगे, बल्कि उससे दूर भागने की कोशिश करेंगे। दूसरी बात, समस्या की निंदा-आलोचना मत कीजिए, उसे गुनहगार मत ठहरा दीजिए, ऐसा मत कहिए कि यह क्या मुसीबत आ गई है, यह कितनी परेशानी पैदा करने वाली है, यह कितनी दुखदायी है। फिर उस समस्या की तुलना किसी और समस्या के साथ करना मत शुरू कर दीजिए या उस समस्या को देखने में कोई तुलनात्मक पैमाना लेकर मत बनाइए। यह सब करना थोड़ा कठिन होता है। जब आप किसी समस्या को देखने वाले होते हैं, तब अगर आप पहले से ही किसी नतीज़े पर पहुंच चुके होते हैं, उस समस्या का उत्तर ढूंढ चुके होते हैं, तब आप उस समस्या को समझ ही नहीं रहे होते हैं। इसलिए, समस्या को समझने के लिए कोई तुलना, कोई डर, कोई निर्णय-निष्कर्ष नहीं होना चाहिए। ये बड़ी आवश्यक बातें हैं जो समस्या को समझने में आपकी मदद करेंगी। दरअसल, तुलना, डर और निर्णय-निष्कर्ष द्वारा निर्मित समस्याओं के अलावा कोई और समस्या होती ही नहीं।

इन बातों को, इन शब्दों को अपने मन में बस जाने दो ताकि तुम इन सब पहलुओं से बखूबी परिचित हो जाओ। तब तुम जीवन की समस्याओं का सामना करने में सक्षम हो जाओगे।

संकट क्या होता है? किसे आप एक समस्या, एक आपत्ति मानते हैं? संकट या समस्या हमारी पिछली लापरवाही से उपजे होते हैं। हम किसी संकट, किसी समस्या, किसी आपत्ति की स्थिति से किस तरह निपटते हैं? दरअसल संकट या समस्या के मुकाबले यह बात अधिक महत्वपूर्ण है कि हम समस्या को देखते किस तरह हैं, कि हम समस्या तक पहुंचते किस तरह हैं। अगर मुझे कोई समस्या है और मैं चाहता हूं उसका समाधान एक ख़ास ढंग से किया जाए, तब मैं समस्या को जान ही नहीं रहा हूं, उसे देख ही नहीं रहा हूं, बल्कि मैं तो यह चाह रहा हूं कि समस्या का समाधान *मेरे* तरीके से हो, *मेरे* अनुकूल हो, *मेरे* स्वार्थ के अनुसार हो, *मेरे* हित में हो—दोनों ही तरह से, यानी स्थूल रूप से भी और मनोवैज्ञानिक तौर पर भी। तो क्या यह जानना महत्वपूर्ण नहीं हो जाता कि हम समस्या तक पहुंचते कैसे हैं, उसके पास कैसे जाते हैं? क्या हम उसके पास वही दिमाग लेकर जाते हैं जो समस्या को सुलझाने के लिए पहले से ही संस्कारित कर दिया गया है?

बचपन से ही हम समस्या को हल करने के लिए, उसका रास्ता निकालने के लिए प्रशिक्षित किए जाते हैं। समूची शिक्षा प्रणाली समस्या का हल निकालना ही सिखाती हैः गणित की समस्या, विज्ञान की समस्या, जीवविज्ञान की समस्या, वास्तु-विज्ञान की समस्या। हमारा दिमाग समस्या का हल निकालने के लिए संस्कारित किया जाता है, यह पहले से ही इस तरह संस्कारित है। समस्या का समाधान करने के लिए हमारा दिमाग स्वतंत्र नहीं है, उसे तो संस्कारित कर दिया गया है। किंतु जब आप समस्या का समाधान निकालने के बजाय समस्या को देखने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं, तब आपका दिमाग समस्या का हल निकालने के संस्कार से मुक्त हो जाता है, और इसीलिए तब आप समस्या तक एकदम नए तौर से पहुंचते हैं। ऐसा दिमाग होना जिसमें कोई समस्या न हो—तभी वह किसी समस्या को सुलझा सकता

है। लेकिन अगर वह ही समस्याग्रस्त है तो फिर वह किसी समस्या को सुलझा नहीं सकता। हमारे चारों ओर यही हो रहा है—राजनैतिक तौर पर भी और धार्मिक तौर पर भी।

हमें यह जानना होगा कि हम समस्या तक कैसे पहुंचें? डर के साथ या किसी वांछित समाधान की धारणा के साथ? या किसी ऐसी बात के साथ जो कि मुझे फ़ायदा देती हो—मेरे व्यावसायिक दायरे में या मेरे मनोवैज्ञानिक दायरे में भी? हमारा दिमाग अगर अपने संस्कारों के बंधन से मुक्त हो गया हो, तो वह किसी भी समस्या को सुलझा सकता है, वह भी ऐसे समाधान द्वारा जो कि और अधिक समस्याओं को पैदा करने वाला न हो। यह बड़ा आसान है।

स्त्रोत :
–कलेक्टेड वर्क्स, खंड : 1, पेज : 87-88
–कलेक्टेड वर्क्स, खंड : 1, पेज : 67
–कलेक्टेड वर्क्स, खंड : 3, पेज : 201
–छात्रों के साथ वार्ता, वाराणसी 1954, पेज : 83
–इन द प्रॉबलम इज द सॉल्यूशन, पेज : 55

—अनुवाद : अचलेश शर्मा

मन उम्मीद क्यों पालता है

प्रश्नकर्ताः बुरे से बुरे संकट के समय में भी अधिकतर लोग किसी न किसी आशा के साथ जिया करते हैं। बिना आशा के, बिना किसी उम्मीद के जीना बड़ा वीराना, डरावना किंतु अपरिहार्य लगता है, जब कि यह आशा, यह उम्मीद एक मृगतृष्णा के अलावा, एक भ्रम के अलावा कुछ नहीं होती। क्या आप बता सकते हैं कि आशा हमारे जीवन के लिए इतनी अनिवार्य, इतनी अपरिहार्य क्यों हो गई है?

कृष्णमूर्तिः क्या ऐसा नहीं है कि हमारे मन का स्वभाव ही यह है कि वह भ्रम पैदा करता रहे? क्या सोचने की हमारी प्रक्रिया ही स्मृति का, विचारों का परिणाम नहीं है जो कि किसी अवधारणा, किसी प्रतीक, किसी छवि को रच लिया करती है और फिर हमारा मन उसी अवधारणा, प्रतीक या छवि के संग लग जाया करता है?

मान लीजिए कि मैं किसी हताशा में हूं, किसी दुख में हूं; और उसके निवारण का कोई रास्ता मुझे सूझ नहीं रहा है; मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि उसका समाधान कैसे करूं। यदि उसका निवारण, उसका समाधान मेरी समझ

[illegible]

[illegible] तो
[illegible] में,
[illegible] द्वंद्व
[illegible] जाता
[illegible] पैदा

[illegible] है; यानी
[illegible] की कोई
[illegible] ई उम्मीद
[illegible] उचित न[illegible]
[illegible] बहुत
[illegible] प[illegible] ने
[illegible] मस्य
[illegible] लेत
[illegible] लगा [illegible]ह स
[illegible] छवि। या य
[illegible] विचा[illegible]
[illegible] मेरा परेशानियों में, [illegible]

उस आशा के साथ, उस विश्वास के साथ छेड़छाड़ करे। फिर मैं उस विश्वास को किसी संगठित विश्वास में, विधि-विधान वाले विश्वास में ढाल लेता हूं और खुद को उसके साथ जोड़ लेता हूं क्योंकि उससे मुझे सुख मिलने लगता है; लेकिन चूंकि मैं समस्या का समाधान तो ढूंढ नहीं पाया हूं, और वह मेरे सामने खड़ी ही रहती है, इसलिए कोई आशा पालना मेरे लिए आवश्यक हो जाता है।

तो क्या मैं समस्या का समाधान कर सकता हूं? यदि मैं समस्या को समझ लूं तो फिर आशा की आवश्यकता ही नहीं रह जाती, तब किसी अवधारणा पर, किसी छवि पर या किसी व्यक्ति पर निर्भर रहने की आवश्यकता ही नहीं रहती, क्योंकि निर्भरता में तो आशा व आश्वासन निहित रहा करता है, उसमें सहारा निहित रहा करता है। तो समस्या यह है कि क्या आशा अत्याज्य है, क्या वह एक ऐसी चीज़ है जिसे छोड़ा न जा सकता हो? क्या मैं अपनी समस्या का समाधान कर सकता हूं, क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे यह जाना जा सकता हो कि दुख से कैसे दूर रहा जाए—यही है मेरी समस्या, न कि यह कि मैं आशा से कैसे निजात पाऊं।

तो वह कौन सा कारक है जो किसी समस्या को समझने के लिए आवश्यक होता है? जाहिर है कि मैं अगर किसी समस्या को समझना चाहता हूं तो मुझे किसी पूर्वनिर्धारित नियम-सिद्धांत का, किसी फ़ॉर्मूले का सहारा नहीं लेना चाहिए, पहले से ही किसी निष्कर्ष पर, किसी निर्णय पर नहीं पहुंच जाना चाहिए। लेकिन अगर हम अपने मन को देखें तो पाएंगे कि वह तो निष्कर्षों से भरा पड़ा है; हम तो पूर्वनिर्धारित नियमों-सिद्धांतों में, फ़ॉर्मूलों में आकंठ डूबे हुए हैं, और इन्हीं के सहारे हम समस्या का समाधान करने की उम्मीद करते हैं। और इसलिए हम मुंसिफ़ बन बैठते हैं, निंदा-आलोचना करते हैं—हम समस्या को समझते नहीं हैं।

समस्या महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि हम

समस्या को देखते कैसे हैं। इसलिए जो मन किसी समस्या को समझना चाहता हो उसे समस्या के बारे में सोचने से पहले अपने मुंसिफ़ाना रंग-ढंग पर गौर करना चाहिए।

यदि शुरुआत ही मैं एक आशा को स्थापित करते हुए और यह कहते हुए करता हूं कि आशा करना तो अनिवार्य है, क्योंकि इसके बिना तो मैं कहीं का नहीं रहूंगा, तब मेरा मन आशा से भरा होता है, मैं उसे आशा से भर दिया करता हूं। लेकिन मेरी समस्या बस यही नहीं है, मेरी समस्या तो दुख की समस्या है, पीड़ा की, गलतियों की समस्या है। लेकिन क्या यह मेरी समस्या है या असल समस्या यह है कि समस्या को मैं किस तरह देखूं, समस्या के प्रति मेरा दृष्टिकोण क्या हो? तो, जो बात महत्वपूर्ण है वह यह है कि मेरा मन समस्या को देखता किस तरह से है।

तब, आशा से मैं पूरी तरह दूर चला जाता हूं क्योंकि आशा मृगतृष्णा होती है, भ्रामक होती है, अवास्तविक होती है, वह यथार्थ नहीं होती। मैं किसी ऐसी चीज़ से कोई सरोकार कैसे रख सकता हूं जो वास्तविक न हो, जिसे मेरे मन ने रच लिया हो, जो अयथार्थ हो, जो केवल भ्रम हो—उसके साथ मैं जुड़ा नहीं रह सकता। जो यथार्थ है, वास्तविक है, वह है मेरा दुख, मेरी निराशा, मायूसी, जो कुछ मैंने किया है वह, यादों की भीड़, और मेरे जीवन के दुख-दर्द। किसी आशा को पाल लेने का कोई महत्व नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि मैं अपने जीवन के दुखों को, अपनी पीड़ाओं को और अपने कष्टों-क्लेशों को किस नज़रिए से देखता हूं, क्योंकि अगर मैं यह जान जाऊं कि मैं उन्हें किस नज़रिए से देखता हूं तभी मैं उनके साथ सही सलूक कर सकूंगा।

तो, आशा करना कोई महत्व नहीं रखता, महत्व इस बात का है कि मैं समस्या के साथ क्या सलूक करता हूं। मैं देखता हूं कि अपनी समस्या के साथ जो सलूक मैं करता हूं वह मेरे किसी निर्णय-निष्कर्ष पर आधारित होता है—या तो मैं उसे

गलत घोषित कर देता हूं या सही मान लेता हूं या उसका रूपांतरण करने की कोशिश करने लगता हूं—या फिर उसे मैं किसी ऐसे फ़ॉर्मूले के चश्मे से देखता हूं जो किसी ने पहले बता रखा हो—कि भगवद्गीता में क्या कहा गया है, कि बुद्ध ने, ईसा ने क्या कहा है। इस तरह मेरा मन इन फ़ॉर्मूलों में, निर्णयों में, उद्धरणों में उलझ कर अपंग बन जाता है, समस्या को वह कभी समझ ही नहीं पाता है, भरपूर तौर पर उसे कभी देख ही नहीं पाता है। तो, क्या यह मन बहुत पुराने ज़माने से संचित होते आए निष्कर्षों-निर्णयों से अपने आपको आज़ाद कर सकता है?

इस बात को अच्छी तरह देख व समझ लीजिए कि आप अपनी समस्या को लेते किस तरह हैं, उसे देखते किस तरह हैं। हम हमेशा करते यह हैं कि किसी न किसी आशा का, उम्मीद का दामन थाम कर चलते रहते हैं और फिर हताश होते रहते हैं—हमेशा ही। यदि हम किसी एक आशा को पूरा कर पाने में विफल रहते हैं तो किसी दूसरी को पकड़ लेते हैं, और इस तरह यह सिलसिला अनंत रूप से चलता ही रहता है। लेकिन, चूंकि मैं नहीं जानता कि किसी समस्या को मैं देखूं किस तरह, उसे समझूं किस तरह, इसलिए मैं तरह-तरह के पलायनों का सहारा लेने लगता हूं। लेकिन अगर मैं यह जान जाता हूं कि समस्या को किस नज़रिए से देखा जाए, तो फिर किसी उम्मीद को पालने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिए, महत्वपूर्ण यह जानना व समझना है कि हमारा मन किसी समस्या को किस अंदाज़ से, किस दृष्टिकोण से देखता है।

आपका मन जब भी किसी समस्या को देखता है तब जाहिर है कि वह उसे भर्त्सना की दृष्टि से देखता है, उसे एक सज़ा या मुसीबत की तरह से देखता है। उसे वह कुछ अलग ढंग से देखते हुए, उसकी ओर प्रतिक्रियात्मक रवैया अपनाते हुए उसे वह हिकारत से देखता है; या उसे वह किसी ऐसी चीज़ में बदल देना चाहता है जो कि दरअसल वह नहीं है। अगर आपमें हिंसा है तो उसे आप अहिंसा में बदलना चाहते हैं। लेकिन, अहिंसा

तो अवास्तविक है, वह तथ्य नहीं है, जो आपमें वास्तव में है वह है हिंसा। तो, महत्वपूर्ण बात यह है कि आप समस्या को कैसे देखते हैं, उसे किस नज़रिए से, किस रवैये से देखते हैं—क्या आप उसे हिकारत से देखते हैं, उसे देखने में क्या आप स्मृतियों का सहारा लेते हैं जो तथाकथित गुरुओं के जरिए आप तक आ गई है।

क्या यह मन इन अवस्थाओं का, अपनी इन मनःस्थितियों का उन्मूलन कर सकता है, उन्हें जड़ से उखाड़ फेंक सकता है, अपने आपको इन अवस्थाओं से, इन भावों से मुक्त कर सकता है और समस्या को ध्यानपूर्वक देख सकता है? क्या वह इस बात के प्रति उदासीन और बेपरवाह हो सकता है कि खुद को इन अवस्थाओं, इन भावों से किस तरह मुक्त किया जाए? यदि वह इस बात की परवाह करता है, चिंता करता है तो फिर आप उस बात में से एक और समस्या पैदा कर रहे होते हैं। लेकिन अगर आप यह देख पाते हैं कि ये अवस्थाएं, ये भाव ही किसी समस्या को देख सकने से आपको रोक रहे हैं, तो फिर इन अवस्थाओं का कोई मूल्य-महत्व नहीं रह जाता है, क्योंकि तब समस्या महत्वपूर्ण हो जाती है, पीड़ा महत्वपूर्ण हो जाती है, देखना महत्वपूर्ण हो जाता है। दुख को आप एक ख़ामख़याली कहते हुए उसे अलग नहीं रख सकते। वह तो है और वहीं है।

इसलिए, जब तक यह मन समस्या को देखने की क्षमता वाला नहीं होगा, जब तक यह मन समस्या को सुलझाने की क्षमता वाला भी नहीं होगा, तब तक यह मन पलायन के तरह-तरह के रास्ते पकड़ता रहेगा; ये रास्ते ही आशा और उम्मीद बन जाते हैं, ये हमारे 'डिफेंस मेकेनिज़्म' का काम करने लगते हैं।

यह मन हमेशा ही समस्या पैदा किया करता है। इसलिए, जो चीज़ अत्यावश्यक है वह है कि जब-जब हम ग़लतियां करें, जब भी हम दुख-दर्द में हों, तब हम बिना किसी निर्णय-निष्कर्ष पर पहुंचे उन गलतियों को, उन दुख-दर्दों को साक्षात देखें,

सीधे-सीधे देखें, उनके प्रति कोई भी दृष्टिकोण अपनाए बिना उन्हें देखें, उनसे पलायन न करें, उनके साथ रहें, और फिर उन्हें स्वतः जाने दें, तिरोहित होने दें। लेकिन, ऐसा तभी हो सकता है जब यह मन निंदा, हेयदृष्टि और हिकारत के भाव वाला न हो, जो किसी फॉर्मूले पर चलने वाला न हो, यानी जब मन बुनियादी रूप से शांत और अविचलित हो; केवल तभी समस्या को समझा जा सकता है।

टोटल फ्रीडम, दसवीं वार्ता, मुंबई, 11 मार्च, 1953

अनुवाद : अचलेश शर्मा

समस्या क्या होती है

हमारी कई समस्याएं हैं, और हर समस्या, मानो कई दूसरी समस्याओं को भी जन्म देती है। बहरहाल हम इस बात पर मिलजुल कर विचार-विमर्श कर सकते हैं कि किसी भी समस्या के समाधान की तलाश न करना ही क्या सबसे अधिक समझदारी की बात नहीं है? मुझे लगता है, हमारे मन जीवन की समग्रता से निपटने में अक्षम हैं; ऐसा प्रतीत होता है कि सभी समस्याओं के साथ हम अलग-अलग तरह से व्यवहार करते हैं, अखंडित तरीके से नहीं। अगर हमारी समस्याएं हों, तो उनका कोई तत्काल हल न ढूंढा जाए, और सब्र के साथ उनकी गहरी छानबीन कर यह पता लगाया जाए कि क्या इच्छाशक्ति के आधार पर कभी यह समस्याएं हल हो सकती हैं—यह हुई सबसे पहली बात। मेरी राय में, समस्या का निराकरण कैसे किया जाए इसका पता करना जरूरी नहीं, बल्कि समस्या के साथ कैसे पेश आया जाए इसका पता करना जरूरी है। क्योंकि मुक्ति के अभाव में हर तरीका सीमित ही होगा; मुक्ति न हो तो हर हल, चाहे वह आर्थिक हो, राजनैतिक हो या व्यक्तिगत या और कोई, वह महज पीड़ा तथा भ्रांति ही

ला सकता है। इसलिए मुझे लगता है कि सच्ची मुक्ति क्या होती है, मुक्ति क्या होती है इस बात को खुद खोजना जरूरी है।

मुक्ति केवल एक ही है—वह है धार्मिक मुक्ति, दूसरी कोई मुक्ति नहीं। तथाकथित कल्याणकारी शासन से आने वाली मुक्ति, हमें दी जाने वाली आर्थिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक तथा दूसरी कोई भी मुक्ति निश्चय ही मुक्ति नहीं है, बल्कि वह और अधिक दुर्व्यवस्था तथा पीड़ा की ओर ले जाती है—जो कोई देखना चाहेगा, उसे यह बात बिलकुल साफ दिखाई देगी। मुझे लगता है कि इस बात की जांच-पड़ताल करने में हमें सारा समय लगाना चाहिए कि धार्मिक मुक्ति क्या है? क्या ऐसी कोई चीज है भी? इस बात की जांच-पड़ताल करने में ही हमें अपना समस्त समय, ऊर्जा, चिंतन लगाना चाहिए। किसी भी मोह का शिकार न बन कर इस अनुसंधान को आखिर तक अगर ले चलना है तो उसके लिए हमें बहुत अधिक अंतर्दृष्टि, ऊर्जा तथा अध्यवसाय की जरूरत होगी। मुझे लगता है, धार्मिक रूप में मुक्त होना क्या होता है, इसी पर हम ध्यान केंद्रित करें तो सार्थक होगा। सारे धर्म-संप्रदायों के जुल्म से, संगठित विश्वासों, मताग्रहों से, सभी दर्शन-प्रणालियों से, सारी विभिन्न योग-साधनाओं से, सत्य की या भगवान की सारी पूर्वनिर्मित धारणाओं से मन को, हमारे अपने व्यक्तिगत मन को मुक्त करना तथा इन सारी बातों को दरकिनार कर इस बात का खुद पता करना क्या संभव है कि धार्मिक मुक्ति क्या है? क्योंकि आखिरकार हमारी सारी व्यक्तिगत तथा सामुदायिक समस्याओं का समाधान केवल धार्मिक मुक्ति में ही है।

इसका वास्तव में अर्थ है, क्या मन खुद को संस्कारों से मुक्त कर सकता है? क्योंकि मन, हमारा अपना मन, आखिरकार काल का, विकास का, परंपरा का, विशाल अनुभव का ही परिणाम है—केवल वर्तमान के अनुभव का ही नहीं, बल्कि अतीत के सामुदायिक अनुभव का भी। हममें से अधिकतर लोग इस संस्कारबद्धता को उदात्त बनाने में, बेहतर बनाने में लगे हुए हैं; लेकिन सवाल उसे उदात्त या बेहतर बनाने का नहीं, बल्कि

सवाल है सारे संस्कारों से मन को पूरी तरह मुक्त करने का। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कौन से धर्म से जुड़ना, कौन सी दर्शन-प्रणाली को स्वीकार करना या मन के परे अगर कोई चीज विद्यमान है, तो उसका साक्षात्कार करने के लिए कौन सी साधन प्रणाली का अभ्यास किया जाए—यह असली मुद्दा नहीं है। असली मुद्दा है अपनी समझ, अपने अनुसंधान और अपने आत्म ज्ञान के जरिए खुद यह पता लगाया जाए कि क्या मन मुक्त हो सकता है। यही सबसे महान क्रांति है। एकमात्र क्रांति है मन को सारे संस्कारों से मुक्त करना।

आखिरकार, अगर वास्तव में कोई शाश्वत वस्तु है, तो उसे पाने के लिए, मन को समय, काल के सन्दर्भ में सोचना छोड़ देना होगा, अतीत का जरा भी संचयन नहीं रहने देना होगा क्योंकि वही काल को जन्म देता है। हम जो भी अनुभव इकट्ठा करते हैं उन्हें छोड़ देना होगा, क्योंकि वे अनुभव ही काल का निर्माण करते हैं। निश्चय ही, हमारा मन काल का परिणाम है, वह अतीत से, हमारे एकत्र किए हुए और निरंतरता देने वाले अनगिनत अनुभवों से संस्कारित है। तो क्या हम धार्मिक दृष्टि से, धर्म के गहनतम अर्थ में सचमुच मुक्त हो सकते हैं? क्योंकि जाहिर है, धर्म-विधि, मताग्रह, सामाजिक नीति, हर रविवार गिरजे में जाना, सद्गुणों का अभ्यास करना, प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला सद्व्यवहार—यह सब धर्म नहीं है।

धर्म इसके अतिरिक्त और बहुत कुछ है, वह इन सब चीजों से बिलकुल अलग है। मन इच्छा शक्ति के, इच्छा के इरादों में, तलाशों, मकसदों, अनगिनत प्रक्षेपणों में फँसा हुआ है और धार्मिक तौर पर मुक्त होना क्या होता है इस बात का अगर हमें पता करना है तो, मेरी राय में, इच्छा शक्ति की, इच्छा की समस्त समस्या को समझना हमारे लिए जरूरी है। मुझे ऐसा लगता है कि केवल इच्छा शक्ति की प्रक्रिया को खत्म करके ही हमारी समस्याओं का निराकरण हो सकता है। पश्चिमी मन को, बल्कि पूर्वी मन को भी यह बात बिलकुल ही विलक्षण लग सकती है

क्योंकि आखिरकार, हम जिस धर्म को अक्सर मानते है वह तथाकथित धर्म, मूलतः कुछ बनने की प्रक्रिया पर ही आधारित होता है, है न? खुद ही प्रक्षेपित की हुई या ईजाद की हुई किसी खास अवस्था को आखिरकार हासिल करने की प्रक्रिया पर ही वह आधारित होता है। कुछ विरले क्षणों में हम एक नई अवस्था का अवश्य अनुभव कर सकते हैं, लेकिन तब उन क्षणों को फिर से पाने की चेष्टा में लगे रहते हैं।

इसका मतलब है, हम फिर कुछ बनने के संकल्प में लग जाते हैं और इसमें काल की प्रक्रिया अंतर्निहित है। जो काल के परे है, कर्म चिंतन तथा भावना के संस्कारों पर आधारित हमारे अनुभव की सीमा के परे है, उस तत्व को अगर मन खोजना चाहता हो, इन सारी चीजों से परे विद्यमान उस तत्व का अगर हम पता लगाना चाहते हैं, तो उसके लिए कई आकांक्षाओं, अभिलाषाओं से बने हुए मन का समाप्त होना निश्चय ही जरूरी है। इसका वास्तव में अर्थ यह है कि मन की समस्त प्रक्रिया ही संस्कारित है, इस बात को समझना जरूरी है। आखिरकार जो मन किसी भी प्रकार के समाज की किसी खास संस्कृति में ढला है, वह सारे चिंतन के परे के उस तत्व को नहीं पा सकेगा; और उसकी प्राप्ति ही क्रांति है, सच्चा धर्म है।

इस बात का महत्व नहीं है कि आप ईसाई हैं, बौद्ध हैं, या हिंदू हैं या किसी विशेष दंभ को संतुष्ट करने के लिए लगातार संप्रदाय बदलने वाले कोई अनुयायी हैं। आप पुरानी धर्म-विधियों को त्याग कर कुछ नई धर्म-विधियों को स्वीकार करते रहते हैं, इस बात का भी कोई महत्व नहीं—धार्मिक उत्सवों में शरीक होने से कैसी उत्तेजना मिलती है यह तो आप जानते ही हैं। मुझे लगता है, जिस मन को सत्य को खोजना है उस मन के लिए यह सब निरुपयोगी ही नहीं बल्कि हानिकारक भी है। लेकिन इस कारोबार को इच्छाशक्ति के व्यापार के द्वारा त्याग देना और अधिक संस्कार पैदा करेगा। मुझे लगता है, इस बात को समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि किसी परिणाम को हासिल करने के लिए प्रयास करने के हम अभ्यस्त हैं। इसीलिए तो हम अभ्यास करते

हैं, हम कुछ सद्‌गुणों का अभ्यास करते हैं, नैतिकता के किसी रूप का अनुसरण करते हैं; और यह सब हमारे किसी गंतव्य तक पहुँचने के प्रयास को दर्शाता है।

मैं चाहूँगा कि इस मामले में हम सब लोग मिलकर सोचें, विचार-विमर्श करें, अनुसंधान करें—सारे बंधनों से मन को वास्तव में मुक्त कैसे किया जाए? क्या इच्छा शक्ति से चिंतन की विभिन्न प्रक्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण कर, मन को संस्कारों से मुक्त करना संभव है? या फिर चिंतन की सारी प्रक्रियाओं की जड़ को ही जला डालने वाला कोई अहसास है? क्या इस मसले की ओर देखने का ऐसा कोई बिलकुल ही अलग तरीका है? अवश्य ही, सारी चिंतन प्रक्रिया संस्कारित ही होती है, मुक्त चिंतन नाम की कोई चीज होती ही नहीं। चिंतन कभी मुक्त हो ही नहीं सकता; वह हमारे संस्कारों का ही परिणाम होता है, हमारी पृष्ठभूमि का, संस्कृति का, हमारी आबो-हवा का, हमारी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पृष्ठभूमि का। जिन पुस्तकों को आप पढ़ते हैं और जो साधनाएँ आप करते हैं वे ही इस पृष्ठभूमि में जमी होती हैं; और कोई भी चिंतन उसी पृष्ठभूमि की उपज होगा।

इसलिए, अगर हम पूरा अहसास रख सकें, तो शायद बिना किसी इच्छा शक्ति की प्रक्रिया के, मन को संस्कार-मुक्त करने के किसी तरीके के बिना ही मन को मुक्त करना संभव होगा और अहसास क्या होता है, उसके मायने क्या हैं इस बात की छानबीन हम अभी करने जा रहे हैं। क्योंकि जैसे ही आप कोई निर्धारण करते हैं, तब वहाँ ''मुझे अपने मन को संस्कार मुक्त करना होगा'' ऐसा चाहने वाली, ऐसा कहने वाली एक हस्ती जरूरी होती है। वह हस्ती खुद किसी फल को हासिल करने की हमारी आकांक्षा से निर्मित होती है—तो द्वंद्व तो पहले ही उपस्थित है। तो क्या अपनी संस्कार-ग्रस्तता का अहसास करना संभव है, बस अहसास करना? उसमें किसी प्रकार का द्वंद्व नहीं होगा। उस अहसास को अगर कार्यरत होने दिया जाए, तो शायद वह समस्याओं को जलाकर राख कर देगा।

आखिरकार हमारी अपनी चिंतन-प्रक्रिया, हमारी समस्याओं, हमारी पीड़ाओं से परे कोई वस्तु है, ऐसा हम सभी को लगता है। शायद उस अवस्था का अनुभव करने के लिए कुछ ही क्षण हमारी जिंदगी में आते हैं। परंतु दुर्भाग्य से, वह अनुभूति ही उस अवस्था की खोज में रुकावट बन जाती है, क्योंकि जिस चीज का हमने अनुभव किया होता है उसी में मन चिपका रह जाता है। यही यथार्थ होगा ऐसा समझ कर हम उससे चिपके रहते हैं पर उससे चिपके रहना ही उससे श्रेष्ठतर वस्तु की अनुभूति में बाधा बन जाता है।

अतः प्रश्न है, जो मन संस्कारित है वह क्या अपनी ओर देख सकता है? बिना पसंद-नापसंद किए, बिना किसी तुलना के, बिना किसी निंदा के क्या वह अपने संस्कारित होने का अहसास कर सकता है? और क्या उस अहसास की मौजूदगी में वह विशिष्ट समस्या, वह विशिष्ट चिंतन जड़ से पूरी तरह खत्म हो जाता है, इस बात को वह मन जान सकता है? निश्चय ही, किसी भी प्रकार का संचय—चाहे ज्ञान का हो या अनुभव का, कोई भी संचय, किसी भी प्रकार का आदर्श, मन का किसी भी तरह का प्रक्षेपण, मन को ढालने का कोई भी निर्धारित अभ्यास—उसे क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए, यह सब अवश्य ही अनुसंधान तथा खोज की प्रक्रिया को अपंग बना देता है। अगर कोई इसकी सचमुच जांच करे, और गहराई से उसके बारे में सोचे तो उसे पता चलेगा कि धार्मिक मुक्ति के लिए मन को सारे संस्कारों से पूरी तरह मुक्त होना जरूरी है। और केवल उस धार्मिक मुक्ति में ही हमारी समस्याओं का निराकरण हो जाएगा।

इसलिए, मुझे लगता है, हमारा अन्वेषण अपनी तात्कालिक समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि जिस मन में सारी परंपरा, सारी स्मृतियाँ, ज्ञान की सारी विरासत संग्रहित है, उस चेतन तथा गहरे अचेतन मन को दरकिनार किया जा सकता है या नहीं इस बात का पता लगाने के लिए हमारा अन्वेषण होना चाहिए। मेरी राय में किसी भी मांग के

बिना, किसी भी दबाव के बिना, मन अगर बस अहसास कर सके तो ही यह संभव है। मुझे यह भी लगता है कि ऐसा अहसास होना बहुत ही मुश्किल बात है क्योंकि हम तात्कालिक समस्या में तथा उसके फौरी समाधान में जकड़े हुए रहते हैं; इसी कारण हमारा जीवन बहुत ही सतही होता है। हम लाख दुनिया भर के विश्लेषकों के पास जाएं, सारी पुस्तकें पढ़ लें, ज्ञान प्राप्त कर लें, गिरजों में हाजिर रहें, प्रार्थना करें, ध्यान करें, अलग-अलग साधन प्रणालियों का अनुष्ठान करें; फिर भी हमारे जीवन स्पष्ट रूप से बिलकुल सतही है—इसलिए गहराई में कैसे पहुंचा जाए, इसकी हमें जानकारी नहीं। मुझे लगता है, ऐसी समझ, ऐसी गहरी पहुंच, बहुत गहरी खोज, केवल अहसास के जरिए ही संभव है—बिना निंदा के, बिना तुलना के, अपने विचारों तथा मनोभावों का बस अहसास रखना, उन्हें बस निरखते रहना। अगर आप प्रयोग करेंगे, तो यह बात आपकी समझ में आ जाएगी कि यह कितना असाधारण रूप से मुश्किल है; क्योंकि हमारा सारा प्रशिक्षण निंदा, समर्थन और तुलना करने का ही रहा है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मन को सारे संस्कारों से मुक्त करने का क्या तात्पर्य है इस बात का खुद पता करना, उसका साक्षात अनुभव करना, यही हमारी असली समस्या है—और वह वास्तव में काल-रहित है। राष्ट्रीयता से मुक्त होना, परंपरागत वांशिक गुणों से मुक्त होना, कुछ मतों से तथा मताग्रहों से मुक्त होना, और किसी भी विशिष्ट संप्रदाय से या धर्म से जुड़े न होना—ये सारी चीजें, जिसने उन पर चिंतन किया है और जो इन बातों के लिए उत्सुक तथा गंभीर है, उस व्यक्ति के लिए तुलनात्मक दृष्टि से आसान हैं। लेकिन इसके बहुत अधिक आगे, इसके परे, निकल जाना कहीं अधिक मुश्किल है। पश्चिमी या पूर्वी संस्कृति की कुछ सतही परतों को फेंक देने से हमने बहुत कुछ कर लिया है ऐसा हम समझते हैं। लेकिन बिना किसी भ्रम के, बिना खुद को धोखा दिए, परे निकल जाना अत्यधिक कठिन है। हममें से अधिकतर लोगों के पास इतनी ऊर्जा ही नहीं होती।

संयम से, दमन से, तप से आने वाली ऊर्जा की बात मैं नही कर रहा हूँ—उनके कारण गलत प्रकार की ऊर्जा आती है, और वह ऊर्जा परीक्षण को विकृत बनाती है। जब मन किसी भी चीज की तलाश में नहीं होता है, किसी तलाश, किसी भी खोज, किसी भी अनुभव की उसे कोई जरूरत ही नही होती, और इस कारण वह सचमुच स्तब्ध मन होता है, ऐसी स्थिति में आने वाली ऊर्जा की मैं बात कर रहा हूं। केवल ऐसा मन ही खोज कर सकता है, क्योंकि जो उसका अपना प्रक्षेपण नहीं है ऐसी चीज को केवल ऐसा स्तब्ध मन ही ग्रहण कर सकता है। स्तब्ध मन ही मुक्त मन है; और ऐसा मन ही धार्मिक मन है।

तो क्या हम इस बात पर गौर कर सकते हैं—किसी चीज की सामूहिक अनुभूति के तौर पर नहीं— तुलनात्मक रूप से वह तो काफी आसान है, बल्कि किस हद तक और कितनी गहराई तक हम संस्कारित हुए हैं इस बात की खोज कर क्या व्यक्ति के रूप में हम खुद उस का पता लगा सकेंगे? और उस संस्कार को, बिना कोई प्रतिक्रिया किए, बिना उसकी निंदा किए, बिना उसे बदलने की कोशिश किए, पुराने संस्कारों की जगह नए संस्कारों को बिना स्थापित किए क्या हम उसका अहसास नहीं कर सकते? क्या उसका इतनी आसानी से तथा गहराई से अहसास कर सकते हैं कि संस्कारित होने की वह सारी प्रक्रिया जड़ से ही जल कर भस्म हो जाए? संस्कारित होने की प्रक्रिया तो, आखिरकार सुरक्षित होने की, चिर-स्थायित्व की अभिलाषा मात्र है। किसी और ने बताया इसलिए नहीं, बल्कि क्या हम खुद यह खोज कर सकते हैं, क्या हम उसका प्रत्यक्ष अहसास कर सकते हैं ताकि उसकी जड़ ही, सुरक्षित होने, स्थायित्व पाने की इच्छा ही जल कर राख हो जाए?

भविष्य में हों या अतीत में, स्थायित्व हासिल करने की, संचित अनुभव से चिपके रहने की अभिलाषा ही तो हमें सुरक्षा का भाव प्रदान करती है—क्या उसी को खत्म नहीं किया जा सकता? क्योंकि वही संस्कार पैदा करती है। मालूम करने और मालूम करने में ही सुरक्षा पाने की अभिलाषा, शक्ति की अनुभूति

पाने की यह अभिलाषा हम सभी में होती है। क्या यह सब मिटा देना हमारे लिए संभव है? संकल्प के द्वारा नहीं, बल्कि अहसास मात्र से उसे जला डालना, ताकि मन अपनी सारी अभिलाषाओं से मुक्त हो सके, और उस शाश्वत तत्व का आगमन हो सके।

मेरी राय में यही एकमात्र क्रांति है—कम्युनिस्ट या किसी और प्रकार की क्रांति नहीं। ऐसी दूसरी क्रांतियाँ हमारी समस्याओं का हल नहीं करती बल्कि उनमें बढ़ोतरी ही करती हैं, हमारी पीड़ाओं मे भी बढ़ोतरी करती हैं—और यह भी काफी स्पष्ट है। निश्चय ही, मन को उसके अपने संस्कारों से मुक्त करना, और इस प्रकार समाज की गिरफ्त से मुक्त करना, यही अकेली सच्ची क्रांति है—महज समाज सुधार नहीं। जो मनुष्य समाज-सुधार करता है वह उसके बावजूद भी समाज की गिरफ्त में ही होता है, लेकिन जो समाज से मुक्त है, वह संस्कार मुक्त होने के कारण अपने अलग ढंग से कर्म करेगा, और उसका समाज पर भी असर पड़ेगा। इसलिए, समाज-सुधार कैसे किया जाए—कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट या और कोई बेहतर कल्याणकारी राज्य कैसे लाया जाए—यह हमारी समस्या नहीं है। यह कोई आर्थिक या राजनैतिक क्रांति नहीं, और न ही वह आतंक के जरिए लायी जाने वाली क्रांति है। किसी भी गंभीर मनुष्य के लिए ये असली समस्याएं नहीं। उसकी असली समस्या होगीः क्या मन सारे संस्कारों से सर्वथा मुक्त हो सकता है?

कई सारे प्रश्न उठाए गए हैं, और उनका उत्तर देने के पहले, मुझे लगता है, इस बात का पता करना जरूरी है कि समस्या से हमारा क्या मतलब है। मन जब व्यस्त रहता है, तभी समस्या का अस्तित्व होता है। मैं आपसे गुजारिश करूंगा कि ध्यान से सुनें, और तत्काल किसी निष्कर्ष पर छलाँग मत लगाइए, क्योंकि हम आपस में मिलकर साथ-साथ इस समस्त मामले की जांच-पड़ताल करने जा रहे हैं। जब मन व्यस्त रहता है, चाहे भगवान में हो, रसोई-घर में हो, किसी व्यक्ति में हो या किसी मनोधारणा में—किसी सद्गुण में, तब ऐसी व्यस्तता निश्चय ही समस्याएं पैदा

करती हैं। अगर मैं भगवान की, सत्य की खोज में व्यस्त रहता हूं, तो वह समस्या बन जाती है; क्योंकि फिर मैं पूछते, मांगते कि कौन सी साधना प्रणाली सबसे अच्छी है, इस बात का पता लगाने की कोशिश करते भटकता रहता हूं। अतः असली सवाल समस्या के बारे में नहीं, बल्कि यह है कि मन व्यस्त क्यों रहता है?

मन व्यस्तता की तलाश में क्यों रहता है? मैं व्यवसाय-कारोबार आदि की दैनंदिन व्यस्तता की बात नहीं कर रहा हूं, बल्कि हमारे रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी हुई मानसिक व्यस्तता की बात कर रहा हूं। क्योंकि चाहे हम भगवान में व्यस्त हों, सत्य में, प्रेम में, सेक्स में, या रसोई घर के मामलों में या फिर राष्ट्र के मामलों में व्यस्त हों, सारी व्यस्तताएँ एक जैसी ही होती हैं—''महान'' व्यस्तता जैसी कोई चीज नहीं होती। मन व्यस्तता की तलाश में होता है, किसी न किसी चीज में वह व्यस्त रहना चाहता है, व्यस्त न होने से वह भयभीत हो जाता है, आप अपनी समस्याओं में कितनी व्यग्रता से व्यस्त रहते हैं इस बात की ओर ध्यान दीजिए; और यदि आप इस तरह व्यस्त न होते, तो क्या हाल होता, इसका पता कीजिए। आपको तुरंत पता चलेगा कि कोई भी व्यस्तता न रहने से वह कितना भयभीत हो जाता है। हमारी सारी संस्कृति कहती है, हमारा सारा प्रशिक्षण कहता है कि मन को व्यस्त रखना जरूरी है; और फिर भी मुझे लगता है कि यह व्यस्तता ही समस्या पैदा करती है। ऐसी बात नहीं कि समस्याएं हैं ही नहीं—समस्याएं अवश्य हैं; परंतु मुझे लगता है, समस्या में व्यस्त रहना ही उस समस्या को समझने में रुकावट बन जाता है। मन को, हमारे अपने मन को ध्यानपूर्वक देखना, तथा किसी न किसी चीज में वह कैसे अविराम व्यस्त रहता है, इस बात का पता करना, सचमुच बड़ा दिलचस्प लगता है—जब मन शांत हो, व्यस्त न हो, रिक्त हो, ऐसा क्षण भी कभी नहीं होता—जिसकी कोई सीमा न हो ऐसा अवकाश कभी नहीं होता।

इस तरह हमेशा व्यस्त होने के कारण, हमारी समस्याएं बढ़ती ही जाती हैं। मन की व्यस्तता की समूची प्रक्रिया को समझे बिना किसी एक ही विशिष्ट समस्या का समाधान केवल दूसरी समस्याएं ही पैदा करेगा। मन अपनी मनोधारणाओं में, अटकलों में, ज्ञान में, विभ्रमों में, अध्ययन में या सद्‌गुण में या भयों में व्यस्त रहना चाहता है; क्या मन के इस विलक्षण आग्रह को हम समझ नहीं सकेंगे? इस सब से मुक्त होना, मन का बिलकुल खाली होना काफी दुष्कर है; क्योंकि उसका अर्थ होगा, चिंतन नाम की स्मृति की इस समूची प्रतिक्रिया की समाप्ति।

प्रश्न : मैं बहुत आसक्त हूँ, और अनासक्ति के भाव को पैदा करना बहुत जरूरी है, ऐसा मैं समझता हूँ। आसक्ति से मुक्ति का यह भाव मुझे कैसे हासिल हो सकेगा?

कृष्णमूर्ति : क्या अनासक्ति हमारी समस्या है? या फिर आसक्ति? आसक्ति से दुःख पैदा होता है, और इसलिए हम अनासक्त होने की इच्छा रखते हैं। अगर आसक्ति की समूची प्रक्रिया को हम ध्यान से देख सकें, महज सतही तौर पर नहीं, बल्कि उसके समग्र तात्पर्य की, उसकी गहराई की जाँच कर सकें, तो फिर शायद जिसे हम अनासक्ति कहते हैं उससे बिलकुल अलग ही किसी भाव का जन्म होगा। किसी भी चीज पर हम आसक्त क्यों होते हैं—संपत्ति पर, लोगों, धारणाओं, मतों पर—कई सारी चीजों पर आसक्त होने के अनगिनत प्रकार आप जानते हैं। हम आसक्त क्यों होते हैं? अपने मित्र, किसी धारणा, किसी गुजरे हुए अनुभव, पुत्र, भाई, मृत पत्नी, किसी न किसी चीज से आसक्ति न हो, तो क्या एक किस्म के भय का भाव हमारे मन में नहीं रहता? हम अगर आसक्त न हों, तो हम निष्ठाहीन हैं, हमारे मन में प्रेम नहीं हैं, ऐसा हमें नहीं लगता? और साथ ही साथ, क्या आसक्ति के जरिए कुछ न बनने का असाधारण भय नहीं होता? असली समस्या यह है; अनासक्ति की भावनाओं को कैसे पैदा करें यह नहीं। अगर आप अनासक्ति का संवर्धन करें, तो वह संवर्धन ही एक समस्या बन जाता है।

कृपया ध्यान दें। मैं आसक्त हूँ। वह आसक्ति भय, एकाकीपन के अलग-अलग रूप, खोखलेपन आदि का परिणाम है। मुझे इस बात का अहसास है और मैं आसक्ति के इस दुःख को भी जानता हूं। इसलिए मैं अनासक्ति का भाव पैदा करना चाहता हूं। मेरा मन अनासक्ति में, और उसे कैसे हासिल किया जाए, इस सोच में व्यस्त हो जाता है। यह प्रक्रिया ही अपने आपमें एक समस्या बन जाती है। ठीक है? मैं अनासक्ति हासिल करना चाहता हूं, इसलिए उस परिणाम में, अनासक्ति नाम की मनोधारणा में व्यस्त हो कर मन उस परिणाम की उपलब्धि को ही एक समस्या बना देता है और फिर द्वंद्व शुरू हो जाता है—''मैं आसक्त हूँ, मुझे अनासक्त होना चाहिए'', फिर दुःख पैदा होता है; और इसलिए, जिस अवस्था में दुःख नहीं, भय नहीं, ऐसी विशेष अवस्था हासिल करने के लिए सतत प्रयास शुरू हो जाता है।

लेकिन अगर मैं आसक्ति की ओर बस देख सकूं, उसका अहसास कर सकूं, और दुःख से छुटकारा पाने के लिए या आसक्ति का सारा निहितार्थ समझने के लिए संघर्ष न करूं, बल्कि बस जिस तरह कोई आकाश का अहसास करता है कि वह मेघाच्छादित है, बारिश से धुंधला है या नीला है, उसी तरह उसका बस अहसास करूं, तो फिर कोई समस्या ही नहीं; तब मन न आसक्ति में व्यस्त होगा और न अनासक्ति में। जब मन इस प्रकार अहसास करेगा, तब आसक्ति का सारा तात्पर्य उसकी समझ में आएगा। लेकिन, किसी भी तरह की निंदा, किसी भी तरह की तुलना या किसी भी प्रकार का मूल्यांकन हो, तो आसक्ति का समूचा आंतरिक तात्पर्य आप देख नहीं सकेंगें।

अगर आप प्रयोग करके देखेंगें, तो आपको पता चलेगा कि केवल अनासक्ति का संवर्धन करना बहुत ही सतही बात लगती है। मान लीजिए कि आप अनासक्त बन गए, तो आगे क्या? पर अगर आपके पास अहसास है, तो आपको इस बात का पता चलेगा कि जहां आसक्ति है वहां प्रेम नहीं हो सकता। जहां

आसक्ति होगी वहां स्थायित्व की, सुरक्षा की, स्व की निरंतरता की अभिलाषा होगी। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि हम आत्मविनाश की चेष्टा में लगे रहें। जब यह सब समझ में आता है, तब आसक्ति की समस्या असाधारण रूप से महत्वपूर्ण तथा व्यापक बन जाती है। आसक्ति में इतना सारा दुःख निहित है, इस कारण आसक्ति से दूर भागना केवल सतही प्रेम को तथा सतही चिंतन को ही जन्म दे सकता है। और हममें से सद्‌गुण की साधना करने वाले अधिकतर लोग—अनासक्ति, अलोभ, अहिंसा आदि की साधना करने वाले लोग सचमुच बहुत ही छिछले जीवन जीते हैं—बस किसी धारणा, किन्हीं शब्दों का जीवन।

अगर आसक्ति की समग्र समस्या का अहसास हो, तो उसकी गहराइयों का हम पता करने लगेंगे, विगत दिवस के अनुभव से जुड़े हुए सुख और दुःख के साथ, उस अनुभव पर मन कैसे आसक्त रहता है, कैसे उससे चिपका रहता है इस बात का हमें पता चलने लगेगा। जब तक हम वास्तव में अहसास नहीं करेंगे, तब तक सुख तथा दुःख दोनों के अनुभव से हम मुक्त नहीं हो सकेंगे। जिस अहसास में कोई पसंदगी नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं, उस अहसास की स्थिति में मन बहुत गहराई में पहुँच सकता है। किसी भी सद्‌गुण का अभ्यास महज प्रतिष्ठा प्रदान कर सकेगा और अधिकतर लोग वही चाहते हैं; क्योंकि प्रतिष्ठा हमें समाज के साथ एकरूप बनाती है। हम सब कुछ न कुछ हैं—छोटे या बड़े, यह या वह, इस बात की मान्यता हम चाहते हैं और उस धारणा पर हम आसक्त हो जाते हैं। लोगों पर आसक्त होने से दुःख पैदा होता है, पर किसी धारणा पर आसक्त होने से संभवतः नही होता।

आसक्ति की इस समग्र समस्या को समझना हो तो परंपरा पर, राष्ट्रीयता पर, रूढ़ि, आदत, ज्ञान, मत, पवित्रता पर, अनगिनत विश्वासों तथा अविश्वासों पर आसक्त होने की समस्या को समझना हो, तो महज उपरी सतह को खरोंचने से काम नहीं चलेगा, अनासक्ति का संवर्धन ही आसक्ति की समस्या का समाधान मान कर नहीं चलना होगा। अनासक्ति का संवर्धन एक

और समस्या बन जाएगा; और यदि हम अनासक्ति का संवर्धन करने की कोशिश न करें, यदि हम आसक्ति की ओर बस देख सकें, तो शायद हम बहुत गहराई में पहुँच कर किसी बिलकुल ही अलग चीज को पाएंगे—वह न आसक्ति होगी और न अनासक्ति।

प्रश्न : मैंने कई दर्शन-प्रणालियों का तथा महान धार्मिक नेताओं के उपदेशों का अध्ययन किया है। हम पहले ही जो कुछ जानते हैं उससे बेहतर कोई चीज हमें देने के लिए क्या आप के पास है?

कृष्णमूर्ति : आप अध्ययन क्यों करते हैं, दर्शन क्यों पढ़ते हैं, धार्मिक नेताओं की बातों को क्यों पढ़ते हैं, पता नहीं। क्या आप समझते हैं कि संपादित किया हुआ, पढ़ा हुआ, ज्ञान आपको कहां पहुंचाएगा? हो सकता है, किसी परिचर्चा में आपकी बुद्धिमत्ता तथा विद्वत्ता का प्रदर्शन करने में वह उपयोगी हो, लेकिन वैज्ञानिक जगत को छोड़ कर, अन्य क्षेत्र में, क्या संचित ज्ञान मनुष्य को सत्य क्या है, भगवान क्या है, शाश्वत क्या है, इस बात की खोज में सहायता कर सकेगा? और ऐसी खोज के अभाव में जीवन का कोई अर्थ ही नहीं। शाश्वत को पाना हो, तो सारे ज्ञान का लुप्त हो जाना क्या जरूरी नहीं है? बुद्ध के, यीशु के, हर किसी के सारे वचनों को दरकिनार करना क्या जरूरी नहीं है? अगर नहीं है, तो आप केवल अपने प्रक्षेपण की ही या अपने संप्रदाय के प्रक्षेपण की ही खोज में लगे हुए हैं; वास्तव में आप अपने खुद के संस्कारों को ही संपादित कर रहे हैं।

अगर कोई परमतत्व विद्यमान है, तो उसके आविर्भाव के लिए आपको ईसाई होना, हिंदू होना या बौद्ध होना या योग-साधक होना बंद करना होगा। आपको उस सबकी पूर्ण समाप्ति कर देनी चाहिए, क्या यह जरूरी नहीं है? ऐसी कोई चीज विद्यमान है ऐसा कहना तथा उसे स्वीकार कर उसे हासिल करने की आस लगाए रहना बड़ी छिछली बात है और ऐसा करना ही अपने

आपमें समस्या पैदा करना है। ईसाई होना, बौद्ध होना, या हिंदू होना ये तो संस्कारित मन को इंगित करने वाले महज प्रतीक हैं— उनमें से कुछ भी न होते हुए बिना किसी ज्ञान के, बिना किसी प्रोत्साहन के, बिना किसी आधार के क्या हम अपनी यात्रा कर सकते हैं? सारे ''जानने'' को दरकिनार करना—यही अकेली समस्या है—न कि ''क्या मेरे पास कुछ बेहतर जानकारी है?'' क्योंकि निश्चय ही हमें एकाकी बनना पड़ेगा—विलग नहीं, ज्ञान तथा अनुभव में एकाकी नहीं, क्योंकि समस्त ज्ञान, सारा अनुभव शाश्वत की खोज में रुकावट है। खोज करने के लिए मन को सारे संस्कारों से मुक्त होना जरूरी है—''केवल'' होना जरूरी है। आप जितना अधिक अभ्यास करेंगे, जितना अधिक संचय करेंगे, जितना अधिक खुद को अनुशासित करेंगे, ढालेंगे, मरोड़ेंगे, जूझेंगे, उतनी ही ''जो है'', उसकी आप की समझ कम होगी।

मैं भारत के किसी निषेधवादी दर्शन की बात नहीं कर रहा हूं—जबकि आप सबकी एक पश्चिमी धारणा है, कुछ न कुछ करते रहने की; मैं उसकी बात नहीं कर रहा। हम जिसकी बात कर रहे हैं वह बिलकुल अलग ही चीज है। मन का अबोध होना, तरो-ताजा होना जरूरी है। जहां ज्ञान का संचय है या किसी गुरु के शब्दों की पुनरावृत्ति है या किसी साधना का फल है वहां मन ताजा तथा अबोध नही रह सकता। क्या मन को अपने संस्कारित होने का अहसास नहीं हो सकता? केवल सतही संस्कारों का नहीं बल्कि सारे प्रतीकों का, सारी विचारधाराओं का, सारी दर्शन-प्रणालियों का, सारी प्रतिमाओं का, गहरे स्तर पर मन को संस्कारित करने वाली उन सारी चीजों का, उस सब का अहसास कर उससे मुक्त हो जाना—ऐसी मुक्ति ही धार्मिक मुक्ति है। वह मुक्ति ही क्रांति लाती है जो विश्व का कायापलट कर सके, ऐसी एकमात्र मुक्ति।

लंदन, 17 जून 1955

अनुवादः चैतन्य नागर

राजघाट स्टडी सेंटर में रिट्रीट

कृष्णमूर्ति अध्ययन केंद्र, राजघाट, वाराणसी में वर्ष 2017 में आयोजित होने वाले स्टडी रिट्रीट का कार्यक्रम इस प्रकार है :

अप्रैल 9 – 13, 2017 : स्टडी रिट्रीट की थीम है

"Awareness in daily living"

रजिस्ट्रेशन के लिए संपर्क करें :

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001

ईमेल : kcentrevns@gmail.com फोन : 0542-2441289

कृष्णमूर्ति वीडियो हिंदी सब्टाइटल्स के साथ

कृष्णमूर्ति की पांच वार्ताओं के वीडियो अब हिंदी सब्टाइटल्स के साथ उपलब्ध हैं:

1. Washington DC 1985 Talk 1
2. Washington DC 1985 Talk 2.
3. Love and Freedom: Turning Point Series Talk 6
4. Krishnamurti with Rishi Valley Students 1984 Talk 3
5. Why there is such chaos in the world? Saanen 6 July 1980

इन्हें मंगवाने के लिए संपर्क करें :

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001

ईमेल : kcentrevns@gmail.com फोन : 0542-2441289

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

हिंदी में उपलब्ध जे. कृष्णमूर्ति की कुछ पुस्तकें

- ज्ञात से मुक्ति
- प्रथम और अंतिम मुक्ति
- हिंसा से परे
- आमूल क्रांति की आवश्यकता
- अंतिम वार्ताएं
- शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य
- स्कूलों के नाम पत्र
- सुखी वही जो कुछ भी नहीं
- ईश्वर क्या है?
- आपको अपने जीवन में क्या करना है?
- ध्यान
- जीवन और मृत्यु
- ये रिश्ते क्या हैं?
- शिक्षा क्या है?
- सोच क्या है?
- आज़ादी की खोज
- प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?
- सत्य और यथार्थ
- मन क्या है?

- **जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद (हिंदी त्रैमासिक पत्रिका)**
- **स्वयं से संवाद (निःशुल्क हिंदी न्यूज़लैटर)**

विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :
कृष्णमूर्ति सेंटर
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया
राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001
ईमेल : kcentrevns@gmail.com
फोन : 0542-2441289
www.j-krishnamurti.org www.jkrishnamurtionline.org
www.kfionline.org www.jkrishnamurti.org

'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ.प्र.) से प्रकाशित।
संपादक : चैतन्य नागर